श्रीमद् भगवद् गीता- तेरहवाँ अध्याय

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

पंडित सुनील वत्स

https://astrodisha.com

Whatsapp No: 7838813444

Facebook: https://www.facebook.com/AstroDishaPtSunilVats

YouTube Channel : https://www.youtube.com/c/astrodisha

Chapter 13- Jnanakarma Sanyasa Yoga

तेरहवाँ अध्याय - क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

तेरहवाँ अध्याय का माहात्म्य | Chapter 13 Mahatmya

श्रीमहादेवजी कहते हैं - पार्वती ! अब तेरहवें अध्याय की अगाध महिमा का वर्णन सुनो। उसको सुनने से तुम बहुत प्रसन्न हो जाओगी। दक्षिण दिशा में तुंगभद्रा नाम की एक बहुत बड़ी नदी है। उसके किनारे हरिहरपुर नामक रमणीय नगर बसा हुआ है। वहाँ हरिहर नाम से साक्षात् भगवान शिवजी विराजमान हैं, जिनके दर्शनमात्र से परम कल्याण की प्राप्ति होती है। हरिहरपुर में हरिदीक्षित नामक एक श्रोत्रिय ब्राह्मण रहते थे, जो तपस्या और स्वाध्याय में संलग्न तथा वेदों के पारगामी विद्वान थे। उनकी एक स्त्री थी, जिसे लोग दुराचार कहकर पुकारते थे। इस नाम के अनुसार ही उसके कर्म भी थे। वह सदा पति को कुवाच्य कहती थी। उसने कभी भी उनके साथ शयन नहीं किया। पति से सम्बन्ध रखने वाले जितने लोग घर पर आते, उन सबको डाँट बताती और स्वयं कामोन्मत्त होकर निरन्तर व्यभिचारियों के साथ रमण किया करती थी। एक दिन नगर को इधर-उधर आते-जाते हुए पुरवासियों से भरा देख उसने निर्जन तथा दुर्गम वन में अपने लिए संकेत स्थान बना लिया। एक समय रात में किसी कामी को न पाकर वह घर के किवाड़ खोल नगर से बाहर संकेत-स्थान पर चली गयी। उस समय उसका चित्त काम से मोहित हो रहा था। वह एक-एक कुंज में तथा प्रत्येक वृक्ष के नीचे जा-जाकर किसी प्रियतम की खोज करने लगी, किन्तु उन सभी स्थानों पर उसका परिश्रम व्यर्थ गया। उसे प्रियतम का दर्शन नहीं हुआ। तब उस वन में नाना प्रकार की बातें कहकर विलाप करने लगी। चारों दिशाओं में घूम-घूमकर वियोगजनित विलाप करती हुई उस स्त्री की आवाज सुनकर कोई सोया हुआ बाघ जाग उठा और उछलकर उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ वह रो रही थी। उधर वह भी उसे आते देख किसी प्रेमी आशंका से उसके सामने खड़ी होने के लिए ओट से बाहर निकल आयी। उस समय व्याघ्र ने आकर उसे नखरूपी बाणों के प्रहार से पृथ्वी पर गिरा दिया। इस अवस्था में भी वह कठोर वाणी में चिल्लाती हुई पूछ बैठीः 'अरे बाघ ! तू किसलिए मुझे मारने को यहाँ आया है? पहले इन सारी बातों को बता दे, फिर मुझे मारना।'

उसकी यह बात सुनकर प्रचण्ड पराक्रमी व्याघ्र क्षणभर के लिए उसे अपना ग्रास बनाने से रुक गया और हँसता हुआ-सा बोलाः 'दक्षिण देश में मलापहा नामक एक नदी है। उसके तट पर मुनिपर्णा नगरी बसी हुई है। वहाँ पँचलिंग नाम से प्रसिद्ध साक्षात् भगवान शंकर निवास करते हैं। उसी नगरी में मैं ब्राह्मण कुमार होकर रहता था। नदी के किनारे अकेला बैठा रहता और जो यज्ञ के अधिकारी नहीं हैं, उन लोगों से भी यज्ञ कराकर उनका अन्न खाया करता था। इतना ही नहीं, धन के लोभ से मैं सदा अपने वेदपाठ के फल को बेचा करता था। मेरा लोभ यहाँ तक बढ़ गया था कि अन्य भिक्षुओं को गालियाँ देकर हटा देता और स्वयं दूसरो को नहीं देने योग्य धन भी बिना दिये ही हमेशा ले लिया करता था। ऋण लेने के बहाने मैं सब लोगों को छला करता था। तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होने पर मैं बूढ़ा हो गया। मेरे बाल सफेद हो गये, आँखों से सूझता न था और मुँह के सारे दाँत गिर गये। इतने पर भी मेरी दान लेने की आदत नहीं छूटी। पर्व आने पर प्रतिग्रह के लोभ से मैं हाथ में कुश लिए तीर्थ के समीप चला जाया करता था। तत्पश्चात् जब मेरे सारे अंग शिथिल हो गये, तब एक बार मैं कुछ धूर्त ब्राह्मणों के घर पर माँगने-खाने के लिए गया। उसी समय मेरे पैर में कुत्ते ने काट दिया। तब मैं मूर्च्छित होकर क्षणभर में पृथ्वी पर गिर पड़ा। मेरे प्राण निकल गये। उसके बाद मैं इसी व्याघ्रयोनि में उत्पन्न हुआ। तब से इस दुर्गम वन में रहता हूँ तथा अपने पूर्व पापों को याद करके कभी धर्मिष्ठ महात्मा, यति, साधु पुरुष तथा सती स्त्रियों को नहीं खाता। पापी-दुराचारी तथा कुलटा स्त्रियों को ही मैं अपना भक्ष्य बनाता हूँ। अतः कुलटा होने के कारण तू अवश्य ही मेरा ग्रास बनेगी।'

यह कहकर वह अपने कठोर नखों से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर के खा गया। इसके बाद यमराज के दूत उस पापिनी को संयमनीपुरी में ले गये। यहाँ यमराज की आज्ञा से उन्होंने अनेकों बार उसे विष्ठा, मूत्र और रक्त से भरे हुए भयानक कुण्डों में गिराया। करोड़ों कल्पों तक उसमें रखने के बाद उसे वहाँ से ले जाकर सौ मन्वन्तरों तक रौरव नरक में रखा। फिर चारों ओर मुँह करके दीन भाव से रोती हुई उस पापिनी को वहाँ से खींचकर दहनानन नामक नरक में गिराया। उस समय उसके केश खुले हुए थे और शरीर भयानक दिखाई देता था। इस प्रकार घोर नरकयातना भोग चुकने पर वह महापापिनी इस लोक में आकर चाण्डाल योनि में उत्पन्न हुई। चाण्डाल के घर में भी प्रतिदिन बढ़ती हुई वह पूर्वजन्म के अभ्यास से पूर्ववत् पापों में प्रवृत्त रही फिर उसे कोढ़ और राजयक्ष्मा का रोग हो गया। नेत्रों में पीड़ा होने लगी फिर कुछ काल के पश्चात् वह पुनः अपने निवासस्थान (हरिहरपुर) को गयी, जहाँ भगवान शिव के अन्तःपुर की स्वामिनी जम्भकादेवी विराजमान हैं। वहाँ उसने वासुदेव नामक एक पवित्र ब्राह्मण

का दर्शन किया, जो निरन्तर गीता के तेरहवें अध्याय का पाठ करता रहता था। उसके मुख से गीता का पाठ सुनते ही वह चाण्डाल शरीर से मुक्त हो गयी और दिव्य देह धारण करके स्वर्गलोक में चली गयी।

।। अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।। | Chapter 13

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।1।।

श्री भगवान बोलेः हे अर्जुन ! यह शरीर 'क्षेत्र' इस नाम से कहा जाता है और इसको जो जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से उनके तत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं।(1)

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।2।।

हे अर्जुन ! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मुझे ही जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ को अर्थात् विकारसहित प्रकति का और पुरुष का जो तत्त्व से जानना है, वह ज्ञान है - ऐसा मेरा मत है।(2)

तत्क्षेत्रं यच्च याद्वक्च यद्विकारि यतश्च यत्।

स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे श्रृणु।।3।।

वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है तथा क्षेत्रज्ञ भी जो और जिस प्रभाववाला है - वह सब संक्षेप में मुझसे सुन।(3)

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।4।।

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्त्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है और विविध वेदमंत्रों द्वारा भी विभागपूर्वक कहा गया है तथा भली भाँति निश्चय किए हुए युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी कहा गया है।(4)

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः।।5।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।6।।

पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति भी तथा दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच इन्द्रियों के विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख, स्थूल देह का पिण्ड, चेतना और धृति - इस प्रकार विकारों के सहित यह क्षेत्र संक्षेप से कहा गया।(5,6)

अमानित्वदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।7।।
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।8।।
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।9।।
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।।10।।
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।11।।

श्रेष्ठता के ज्ञान का अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, किसी प्राणी को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी आदि की सरलता, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता और मन-इन्द्रियोंसहित शरीर का निग्रह। इस लोक और परलोक सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना। पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में आसक्ति का अभाव, ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना। मुझ परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकान्त और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना। अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना - यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है - ऐसा कहा है।(7,8,9,10,11)

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।12।।

जो जानने योग्य हैं तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा। वह अनादि वाला परब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही।(12)

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।13।।

वह सब ओर हाथ पैर वाला, सब और नेत्र, सिर ओर मुख वाला तथा सब ओर कान वाला है क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है।(13)

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।14।।

वह सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित होने पर भी सबका धारण-पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है।(14)

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।15।।

वह चराचर सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है और चर-अचर भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर में भी वही स्थित है।(15)

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।16।।

वह परमात्मा विभागरहित एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण होने पर भी चराचर सम्पूर्ण भूतों में विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है तथा वह जानने योग्य परमात्मा के विष्णुरूप से भूतों को धारण-पोषण करने वाला और रुद्ररूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मारूप से सबको उत्पन्न करने वाला है।(16)

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।17।।
वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति और माया से अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जानने के योग्य तथा तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय मे विशेषरूप से स्थित है।(17)

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।।18।।
इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप संक्षेप से कहा गया। मेरा भक्त इसको तत्त्व से जानकर मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।(18)

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।19।।
प्रकृति और पुरुष - इन दोनों को ही तू अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न जान।(19)

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरूच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।20।।
कार्य और करण को उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दुःखों के भोक्तापन में अर्थात् भोगने में हेतु कहा जाता है।(20)

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।21।।
प्रकृति में स्थित ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है और इन गुणों का संग ही इस जीवात्मा का अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है।(21)

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।।22।।

इस देह में स्थित वह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। वही साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाला होने से अनुमन्ता, सबका धारण-पोषण करने वाला होने से भर्ता, जीवरूप से भोक्ता, ब्रह्मा आदि का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होने से परमात्मा-ऐसा कहा गया है।(22)

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।23।।

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्त्व से जानता है, वह सब प्रकार से कर्तव्यकर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता।(23)

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।24।।

उस परमात्मा को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं। अन्य कितने ही ज्ञानयोग के द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोग के द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।(24)

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।।25।।

परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धि वाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरों से अर्थात् तत्त्व के जानने वाले पुरुषों से सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसार सागर को निःसंदेह तर जाते हैं।(25)

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ।।26।।

हे अर्जुन ! यावन्मात्र जितने भी स्थावर-जंगम प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबको तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न जान।(26)

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं पश्यति स पश्यति।।27।।

जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में परमेश्वर को नाशरहित और समभाव से स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है।(27)

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।28।।
क्योंकि जो पुरुष सबमें समभाव से स्थित परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा अपने को नष्ट नहीं करता, इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।(28)

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।।29।।
और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति के द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और आत्मा को अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है।(29)

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।30।।
जिस क्षण यह पुरुष भूतों पृथक-पृथक भाव को एक परमात्मा में ही स्थित तथा उस परमात्मा से ही सम्पूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।(30)

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।31।।
अर्जुन ! अनादि होने से और निर्गुण होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होने पर भी वास्तव में न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है।(31)

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।।32।।
जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होने के कारण देह के गुणों से लिप्त नहीं होता।(32)

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।33।।

हे अर्जुन ! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।(33)

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।34।।

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा कार्यसहित प्रकृति से मुक्त होने का जो पुरुष ज्ञान-नेत्रों द्वारा तत्त्व से जानते हैं, वे महात्माजन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।(34)

॥ ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

॥ इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग नामक तेरहवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ ॥

पंडित सुनील दत्त

पहला अध्याय - अर्जुनविषादयोग

https://astrodisha.com/chapter-01-arjun-vishada-yoga-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/

दूसरा अध्याय – सांख्ययोग

https://astrodisha.com/chapter-02-sankhya-yoga-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/

तीसरा अध्याय – कर्मयोग

https://astrodisha.com/chapter-03-karma-yoga-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/

चौथा अध्याय – ज्ञानकर्मसन्यासयोग

https://astrodisha.com/chapter-04-jnanakarma-sanyasa-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/

पाँचवाँ अध्याय – कर्मसंन्यासयोग

https://astrodisha.com/chapter-05-karma-sannyasa-yoga-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/

छठा अध्याय – आत्मसंयमयोग

https://astrodisha.com/chapter-06-atmasayam-yog-shrimad-bhagwat-gita-download-free-pdf/

सातवाँ अध्याय – ज्ञानविज्ञानयोग

https://astrodisha.com/chapter-07-gyan-vigyan-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

आठवाँ अध्याय – अक्षरब्रह्मयोग

https://astrodisha.com/chapter-08-aksharbrahma-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

नौवाँ अध्याय – राजविद्याराजगुह्ययोग

https://astrodisha.com/chapter-09-rajavidyarajguhya-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

दसवाँ अध्याय – विभूतियोग

https://astrodisha.com/chapter-10-vibhuti-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

ग्यारहवाँ अध्याय - विश्वरूपदर्शनयोग

https://astrodisha.com/chapter-11-vishwaroop-darshan-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

बारहवाँ अध्याय - भक्तियोग

https://astrodisha.com/chapter-12-bhakti-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

तेरहवाँ अध्याय - क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

https://astrodisha.com/chapter-13-kshetra-kshetra-vibhag-yog-bhagwat-gita-download-free-pdf/

चौदहवाँ अध्याय – गुणत्रयविभागयोग

https://astrodisha.com/chapter-14-gunatray-vibhaga-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

पंद्रहवाँ अध्याय – पुरुषोत्तमयोग

https://astrodisha.com/chapter-15-purushottama-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

सोलहवाँ अध्याय – दैवासुरसंपद्विभागयोग

https://astrodisha.com/chapter-16-daivasurasampadvibhaga-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

सत्रहवाँ अध्याय – श्रद्धात्रयविभागयोग

https://astrodisha.com/chapter-17-shraddhatray-vibhaga-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

अठारहवाँ अध्याय – मोक्षसंन्यासयोग

https://astrodisha.com/chapter-18-moksha-sannyasa-yoga-bhagwat-gita-download-free-pdf/

पंडित सुनील वत्स

पंडित सुनील वत्स

Website : https://astrodisha.com

Whatsapp No : +91- 7838813444

Contact No: +91-7838813 - 444 / 555 / 666 / 777

Facebook : https://www.facebook.com/AstroDishaPtSunilVats

YouTube Channel : https://www.youtube.com/c/astrodisha

पंडित सुनील वत्स